सूचीपत्र

	पृष्ठ
वाणि ! मङ्गलम्	घ
१. विश्वे देवाः (१. ८९)—स्वस्ति	२
२. विश्वे देवाः (१. १६४)—अस्यवामीयम्	६
३. ज्ञानम् (१०. ७१)	१६
४. विश्वकर्मा (१०. ८२)	२०
५. मन्युः (१०. ८३)	२२
६. सूर्या (१०. ८५)—विवाहः	२६
७. पुरुषः (१०. ९०)	३६
८. इन्द्रः (१०. ११९)—सोमपानम्	४०
९. कः प्रजापतिः (१०. १२१)—हिरण्यगर्भः	४४
१०. वाक् (१०. १२५)	४८
११. भाववृत्तम् (१०. १२९)—नासदीयम्	५०
१२. श्रद्धा (१०. १५१)—कामायनी	५४
१३. भाववृत्तम् (१०. १५४)	५६
१४ भाववृत्तम् (१०. १९०)—सृष्टिक्रमः	५८
१५. संज्ञानम् (१०. १९१)—संगच्छध्वं	६०

वाणि !

विश्व-विग्रहा वैखरी गिरा
आदि सत्ताभिव्यक्ति सस्पन्द !

तुम्हीं से पाते हैं आकार
प्राण के सत्, चित्, औ आनन्द ॥१॥

सिसृक्षा की किरणों के सूत्र
ग्रहण कर बुनतीं संसृति-जाल !

ब्रह्म का बृंहण करती तुम्हीं
जोड़ती तुम्हीं विश्व की माल ॥२॥

जागृति स्वप्न, स्वप्न जागृति
स्थूल से सूक्ष्म, सूक्ष्म से स्थूल

सृजन से नाद, नाद से सृजन
गिरे ! तुम ही हो संसृति मूल ॥३॥

अकारादि हकार-पर्यन्त
मातृका के हैं जितने वर्ण

अहं की छाया में आश्वस्त
राग, लय, छन्द ताल के पर्ण ॥४॥

हमारे हेतु सृष्टि का छोर
वहीं है जहाँ दृष्टि का अन्त

किन्तु तुम अम्बर के उस पार
परस लेती हो गिरे ! दिगन्त ॥५॥

ज्ञान-गरिमा से अक्षर-तत्त्व
हुआ मुखरित जब पहली बार

तमस की जड़ता भागी दूर
मन्त्र से हुआ सत्त्व-सञ्चार ॥६॥

तुम्हारी नाद-रश्मि के सूत्र
ग्रहण कर ज्ञान और विज्ञान

जीव से जीवान्तर-संक्रान्त
हुआ करते मिटता अज्ञान ॥७॥

जीव के श्वास और निश्वास
मौन हो करते सोऽहं नाद

वही सोऽहं जब होता मुखर
हंस-वाहन बनता साह्लाद ॥८॥

अभी तक गूंज रहा है गिरे !
आम्भृणि !! सूक्तों में तव घोष

क्रान्त-दृष्टि देती हूँ उसे
कि जिस पर होती सानुक्रोश ॥९॥

हो रही द्यौ-पृथ्वी में व्याप्त
नीर-निधि-तल से उठ कर वाणि !

व्योम तक गतिमय हो निर्बाध
वात-सम बहती हो कल्याणि ॥१०॥

तुम्हारा वह स्वचिन्मय रूप
कि जिससे ओतप्रोत है धरा

परम अव्यक्त. शब्द से परे
जिसे ऋषि-गण कहते हैं परा ॥११॥

जहाँ पर नहीं व्यष्टि का भाव
समष्टि का ही परम प्रकाश

जहाँ तक परा गिरा है सूक्ष्म
वहीं तक है केवल आकाश ॥१२॥

प्रणामाञ्जलि परा के हेतु
परा के हेतु श्रद्धा-फूल !

कि जिसके लिये ज्ञान-विज्ञान
कौन जानेगा उसके कूल ॥१३॥

—दयानन्द भार्गव

ऋचा-रहस्य

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ १ ॥
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥ २ ॥
तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ ३ ॥

भद्र सङ्कल्प चतुर्दिक् से हों हमको प्राप्त
देवगण सदा हमारी वृद्धि-

अविकृत, विघ्न-रहित, प्रस्फुटित ।
-हेतु बन रक्षक दें सान्निध्य ॥१॥

ऋजु-प्रिय देवों की कल्याण-
हमे हो देव-मैत्री उपलब्ध

-पूर्ण मति, कृपा चतुर्दिक् रहे ।
देव दें आयुष् जीवन हेतु ॥२॥

पुरातन वाणी से आहूत
अर्यमा, वरुण, सोम, अश्विनी

मित्र, भग, अदिति दक्ष औ मरुत्
सुभग शारदा करे सुखदान ॥३॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत् पिता द्यौः ।
तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ ४ ॥

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ५ ॥

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६ ॥

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥ ७ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ ८ ॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ ९ ॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १० ॥

वायु औषधि बने सुखरूप
सुखद सोम-प्रद हों पाषाण

जगत् के ईश, अचर के पति
कि सम्पद्-वृद्धि-हेतु संलग्न

बहुल-यश इन्द्र स्वस्तियुत बनें
अ-प्रतिहत-नेमि तार्क्ष्य हों स्वस्ति
बिन्दु-युत-अश्वारोही मरुत्
अग्निजिह्वा, मनु, रवि-सम-दीप्त

देव ! हम सुनें कान से भद्र
स्वस्थ स्तुति-रत स्थिराङ्ग हम देव-
शरद् का शतक नियत है काल
हमारे सुत बनते हैं पिता

अदिति द्यौ, अन्तरिक्ष है अदिति
अदिति सब देव, पञ्चजन वही

तथा माँ भूमि, पिता आकाश
ध्येय अश्विनी ! सुनो यह विनय ॥४॥

विनय-संतुष्ट उसी का करते हम आह्वान
बनें पूषा रक्षक अविकार ॥५॥

स्वस्तियुत हों पूषा सर्वज्ञ
बृहस्पति स्वस्ति-दान दें हमें ॥६॥

पृश्नि-सुत शस्त-गति क्रतु-गामी
देवगण यहाँ आयें रक्षार्थ ॥७॥

भद्र देखें आँखों से पूज्य !!
-दत्त आयुष् भोगें सानन्द ॥८॥

देव ! जिसमें तनु होते जीर्ण
न काटो आयुष् यात्रा-मध्य ॥९॥

अदिति माँ, वही पिता, वह पुत्र
अदिति ही जन्म और सन्तति ॥१०॥

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥

इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥

को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित् को विद्वांसमुप गात् प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥

पाकः पृच्छामि मनसाविजानन् देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून् वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ५ ॥

अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ६ ॥

इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुहते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥

इस तरुण वृद्ध होता का
भ्राता तृतीय की पीठ स-घृत, मैंने देखा

उसका भ्राता मध्यम है खाऊ
यहां सात पुत्र वाले मनुष्य के स्वामी को ॥१॥

वे एक चक्र वाले रथ में जोड़ते सात
वह अजर अनश्वर चक्र त्रिनाभि जहां

एकाकी घोड़ा सात नाम वाला ढोता
वहां ये सकल भुवन हैं टिके हुए उसके अन्दर ॥२॥

ये सात अधिष्ठाता जो इस सत-
हैं सात भगिनियां साथ-साथ इसमें चढ़ती

पहिये रथ के, सात अश्व ढोने वाले
हैं सात नाम गौओं के इसमें टिके हुए ॥३॥

किसने देखा—पहले उत्पन्न हुआ जो था
पृथ्वी से प्राण, खून जन्में; आत्मा किससे

कैसे हड्डी से रहित धारता हड़ियल को ?
है कौन कि यह पूछने जाये विद्वानों से ? ॥४॥

अप्रौढ बुद्धि अनजानचित्त मैं, देवों के
वत्स के उढ़ाने के हेतु थे कौन सप्त

पद कहां निहित हैं, पूछ रहा हूँ यह सबसे
तन्तु, कवियों ने जिन्हें बुना, सबके निवास ॥५॥

मैं नहीं जानता, जिज्ञासु हो पूछ रहा
है कौन अजन्मा-रूप एक, ऐसा जिसने

कवियों से, विद्वानों से, मैं तो हूँ अजान
इन छह लोकों को एकाकी ने धारा है ॥६॥

बतलाये, हो यह ज्ञात जिसे, यहीं हमें
गौएं अपने सिरे से हैं दूध निकाल रहीं

इस तरुण विहग का निहित कहां है चरण स्थिर ?
इसके स्वरूप को धार उदक पीती पद से ॥७॥

माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥

युक्ता मातासीद् धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद् गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद् वत्सो अनु गामपश्यत् विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥

तिस्रो मातॄस्त्रीन् पितॄन् बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥१०॥

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥११॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥१२॥

पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥१३॥

सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥१४॥

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद् यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥१५॥

स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात् स पितुष्पितासत् ॥१६॥

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् क्व स्वित् सूते नहि यूथे अन्तः ॥१७॥

अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद् देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥१८॥

ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥१९॥

माता ने धी से ऋत के लिये पिता पूजा
वह गर्भेच्छु भर गई गर्भ-रस से एवं
किन्तु उसने उसका मन पहले जान लिया
सन्नमस्कार वाणी-विनिमय सब करते थे ॥८॥

माता दक्षिणा-धुरी में जोती गई, गर्भ
वत्स ने रंभाकर देखा उस धेनु को जो
नीरद के अन्तस्तल में जाकर ठहर गया
तीनों योजन में सकल रूप धारण करती ॥९॥

तीनों माताओं तीन पिताओं को धारे
इस गगन-पृष्ठ पर सर्व-सुगम वाणी द्वारा
वह एकाकी ऊर्ध्वस्थित है, विश्रान्त नहीं
मन्त्रणा कर रहे, किन्तु सबको ज्ञात नहीं ॥१०॥

वह ऋत का चक्र, अरे जिसके बारह, द्यौ के
हैं उसी चक्र पर टिके हुए हे अग्नि ! यहां
घूमता चतुर्दिक्, कभी न होता जीर्ण तथा
सात सौ बीस, जोड़े बनकर, तेरे आत्मज ॥११॥

है पञ्चपाद द्वादशमुख पिता पुरीषिन् जो
दूसरे उसे कहते अर्क्षित, दूसरे अर्ध में जो रहता
द्यौ के परार्ध में रहता, ऐसा कहते हैं
छह अरे सात पहियों वाले रथ पर शोभित ॥१२॥

वह चक्र घूमता, अरे हैं जिसके पांच, वहीं
बहु भार पड़े पर भी इसका तपता न अक्ष
ये सकल भुवन हैं टिके हुए उस पहिये पर
नाभि न कभी इसकी होती है जीर्ण शीर्ण ॥१३॥

यह चक्र अजर घूमता नेभि जिसकी समतल
रवि-चक्षु रजस् से घिरा हुआ है घूम रहा
उत्तर-तल पर दस जुड़े हुए इसको ढोते
हैं टिके हुए ये सकल भुवन उसके अन्दर ॥१४॥

सातवां साथ उत्पन्न हुओं में एक-ज है
हैं उनके इष्ट रखे धामों में पृथक् पृथक्
छह हैं इनमें जुड़वा ऋषि देवों से प्रसूत
रूपशः पृथक् वे स्थिर के लिये घूमते हैं ॥१५॥

स्त्रियां पुरुष हैं सत्य, उन्होंने मुझे कहा
वह पुत्र कि जो है कवि जानता है इसको
आंखों वाला ही इसे देखता, न कि अन्ध
जो इसे जानता है, वह पिता पिता का भी ॥१६॥

नीचे आगे के पद से ऊपर पीछे के
वह कहां गयी ? आधे पथ से किसको लौटी ?
वत्स को धारती हुई गऊ उठ खड़ी हुई
वह कहां वत्स जनती ? न यूथ के बीच कहीं ॥१७॥

जो इसके पिता अवर को परसे युक्त, तथा
कवि है, पर कौन बता सकता है इस जग में
पर को संयुक्त अवर से जाने, वह मानों
मन देव कहां से पैदा होकर आया है ॥१८॥

अधोगामी कहलाते ऊर्ध्वगमनशाली
हे सोम ! इन्द्र के सहित बनाये जो तुमने
कहलाते ऊर्ध्वगमनशाली भी अधोगामी
वे धारण करते रजस् धुरा में युक्त-सदृश ॥१९॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥२०॥

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥२१॥

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥२२॥

यद् गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद् वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद् वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत् तद् विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥२३॥

गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाऽक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥२४॥

जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद् रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥२५॥

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥२६॥

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥२७॥

गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।
सृक्कांणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥२८॥

अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद् भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥२९॥

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥३०॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥३१॥

भूपा-रहस्य

दयानन्द भार्गव

दो साथ-साथ रहने वाले साथी, सुन्दर
उनमें से एक स्वादु पिप्पल-फल खाता है
पंखों वाले पंछी समान तरु पर बैठे
दूसरा बिना कुछ भी खाये देखता-मात्र ॥२०॥

वे सुन्दर पंखों वाले पंछी जहां सतत
हैं वही विश्व का स्वामी भुवनों का रक्षक
अमृत का भाग सभी में मुखर किया करते
वह मुझ अप्रौढ़मन वाले में आविष्ट हुआ ॥२१॥

जिस तरु पर मधु खाने वाले, सुन्दर पंखों
उसके फल का अग्रिम स्वादु बतलाते हैं
वाले, पंछी रहते, सब पर देते हैं जन्म
जो नहीं पिता को जाने, उसे न खा पाता ॥२२॥

जो था गायत्र निहित गायत्री में अथवा
अथवा जो जगत् निहित था जगती में, जो भी
त्रैष्टुभ में जिस त्रैष्टुभ का था निर्माण हुआ
जानते इसे वे ही अमृत-पद पाते हैं ॥२३॥

गायत्री से ढालता अर्चना, साम
वाणी को वाणी द्विपद चतुष्पद से एवं
अर्चना से, त्रैष्टुभ से वाणी को
अक्षर से सप्तवाणियों को ढालता है वह ॥२४॥

जगती से सिन्धु किया सुस्थिर अम्बरतल में
गायत्री की समिधायें तीन कही जाती
देखा उसने दैवत आदित्य रथन्तर में
इसलिये बढ़ा वह महिमा से औ तेजस् से ॥२५॥

करता आह्वान सु-दुग्धी उस धेनु का मैं
सविता को उत्तम रस स्वीकार हमारा हो
ग्वाला सु-हस्त उसका दोहन कर सके ताकि
ऊष्मा उसकी बढ़ सके, घोषणा यह मेरी ॥२६॥

वसुओं की वसुपत्नी हिंकार-शब्द करती
यह अहन्या गौअश्विनियों को दे दुग्ध तथा
वत्स को चाहती हुई चित्त में आती है
महती सौभाग्य-सम्पदा देने हेतु बढ़े ॥२७॥

आंखें मूंदे वत्स के लिये गौ रंभा रही
सस्नेह गरम थन पर उसका मुख बुला रही
मस्तक पर हिङ्कृति करती कि वह भी रंभावे
है रंभा रही मृदु और दूध भी पिला रही ॥२८॥

यह रंभा रहा है जिसने घेरा है गौ को
चेतना-शक्ति से करती वह निर्मित मानव
वह रंभा रही है मृदु स्वर में मेघाश्रय से
विद्युत् जैसी अपना आवरण उठाती है ॥२९॥

यह जीव प्राणयुत् तीव्रगति औ कम्पमान
यह जीव मृतार्पित स्वधा-शक्ति से चरणशील
दृढतया गृहों के मध्य स्थित विश्रामशील
है स्वयं अमर्त्य परन्तु मर्त्य-सयोनि है ॥३०॥

मैंने देखा वह गोप, न जो थकता गिरता
वह धारण करता व्यष्टि-समष्टि दोनों को
आता जाता जो विचरण करता मार्गों से
वह बारम्बार चरण करता इन लोकों में ॥३१॥

य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥३२॥

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वो३ र्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥३३॥

पृच्छामिं त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामिं त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामिं वाचः परमं व्योम ॥३४॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥३५॥

सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परिं भवन्ति विश्वतः ॥३६॥

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्यादिद् वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥३७॥

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्य१न्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥३८॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद् विदुस्त इमे समासते ॥३९॥

सूयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४०॥

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥४१॥

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।
ततः क्षरत्यक्षरं तद् विश्वमुप जीवति ॥४२॥

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥४३॥

जिसने निर्माण किया इसका जानता न वह
माता की योनि में था अन्तर्निहित अभी

इसको जिसने देखा यह उससे गुप्त रहा
दुर्भद्रभाव को बहुप्रजा हो गया प्राप्त ॥३२॥

द्यौ पिता जन्मदाता मेरी है यहां बन्धु
दो उठे कपालों में है योनि, यहां पिता

यह नाभि, मही महती यह मेरी माता है
दुहिता का गर्भ इसी में स्थापित करता है ॥३३॥

मैं पूछ रहा तुमसे पृथ्वी का परम अन्त
मैं पूछ रहा तुमसे कि अश्व का रेतस् क्या

मैं पूछ रहा कि कहां भुवन की नाभि है
मैं पूछ रहा क्या है वाणी का परम व्योम ॥३४॥

यह वेदी ही है इस पृथ्वी का परम अन्त
जो बरस रहा है यहां अश्व का रेतस् है

यह यज्ञ भुवन की नाभि है, यह सोम तथा
है ब्रह्मा ही यह इस वाणी का परम व्योम ॥३५॥

है सात अर्धगर्भा रेतस् इस संसृति का
वे बुद्धिमान् बुद्धि औ मन से युक्त तथा

हैं उनके कर्म विष्णु के विविध विधानों से
सर्वव्यापी सर्वतः हमें घेरे रहते ॥३६॥

मैं नहीं जानता यदि यह सब कुछ मैं ही हूं
जब ऋत का प्रथम-ज दर्शन मुझे प्राप्त होता

मनसे संयुक्त रहस्यात्मक विचार करता
मैं इस वाणी का भाग भोगता हूँ तुरन्त ॥३७॥

ऊपर नीचे आगे पीछे जाता अमर्त्य
वे सदा पृथक् विपरीतदिशा में जाते दो

जो स्वधा-गृहीत तथा सहयोनि मर्त्य का है
एक को जानते, नहीं जानते हैं पर को ॥३८॥

है ऋक् का अक्षर परम व्योम वह कि जिसमें
जो उसे न जाने ऋचा करेगी क्या उसका

सारे देवता अधिष्ठित रहते आये हैं
जो उसे जानते वे ही हैं ये परिपूर्ण ॥३९॥

तुम सुन्दर चरागाह के चारे को पाकर
हे अहन्ये ! तृण सर्वदा सदा खाओ, विचरण

भगवती बनो, भगवन्त बनें हम भी धेनो !
कर सभी ओर पानी पीओ निर्मल पवित्र ॥४०॥

गौरी करती जल का निर्माण रंभाती है
वह अष्टपदी अथवा नवपदी बन गयी है

जो एकपदी द्विपदी है अथवा चतुष्पदी
वह सहस्राक्षरा परम व्योम में अधिष्ठिता ॥४१॥

उससे समुद्र प्रस्रवित हो रहे हैं, उससे
उससे यह अक्षर द्रवित हो रहा

ये चारों दिशा-लोक जीवन पाया करते
विश्व उसी पर आश्रित है ॥४२॥

देखी मैंने गोमय से उठती धूम दूर
वीरों ने जो थी वृषभ-सोम बिन्दु-संयुत

उस साधन से हो गया हेतु का ज्ञान मुझे
उसको रांधी, वे आदि-विधान धर्म के थे ॥४३॥

त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४॥

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥४५॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥४६॥

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद् घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥४७॥

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥४८॥

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद् यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥४९॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥५०॥

समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः ।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ॥५१॥

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥५२॥

तीन केशधारी ऋतु के अनुसार देखते
एक देखता विश्व स्वकीया शक्ति से

वाणी के चार सुसीमित पद हैं, उनको जो
उनमें से तीन गुहा में निहित न गति करते

कहते हैं उसे वरुण, अग्नि और इन्द्र, मित्र
एक ही अनेक प्रकारों से सत् को ऋषिगण

है मार्ग उतरने का काला, पंछी सुन्दर
वे ऋत-स्थान से बारम्बार लौटते हैं

है एक चक्र जिसके घेरे बारह हैं औ
तीन सौ साठ उसमें हैं अरे समर्पित जो

जो तेरा स्तन परिसुप्त अनन्त सुखप्रद है
जानता वसु को, रत्न धारता, देता शुभ

यज्ञ का यज्ञ से देवों ने जो अनुष्ठान
वे महिमाशाली प्राप्त स्वर्ग को हुए जहां

यह वही उदक ऊपर नीचे जाता
पृथ्वी को बादल तृप्त किया करते एवं

जो दिव्य सुपर्ण बृहत् है वायु-सञ्चारी
वर्षा-ऋतु में वर्षा के द्वारा तृप्ति-कारी

संवत्सर में उनमें से बोता है एक
दिखता है एक का मार्ग-मात्र, पर रूप नहीं ॥४४॥

ब्रह्मज्ञ मनीषी हैं वे ही जानते, क्योंकि
वाणी का चौथा पद ही मानव बोल रहे ॥४५॥

औ वह ही दिव्य सुवर्ण गरुड़ कहलाता है
बतलाते हैं यम, अग्नि, मातरिश्वा कहते ॥४६॥

पंखों वाले, जल धारे स्वर्ग उड़े जाते
घृत से हो जाती है गीली यह वसुन्धरा ॥४७॥

है तीन अक्ष, है कौन कि उसे जानता हो
चलते भी हैं मानों चलते भी नहीं किन्तु ॥४८॥

जिससे सारे वरणीय पदार्थ पालती हो
पोषण के हेतु सरस्वति ! उसको यहां रखो ॥४९॥

था किया, वही था प्रथम धर्मविधि का विधान
हैं सृजनशक्ति-सामर्थ्य-युक्त प्राचीन देव ॥५०॥

दिवसों के साथ साथ
अम्बर को तृप्त किया करते हैं अग्नि-वृन्द ॥५१॥

जल का मूलोद्गम, दरसाने वाला औषधि
उस सरस्वान् को बुला रहा मैं रक्षाहित ॥५२॥

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥ १ ॥

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥ २ ॥

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् ।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते ॥ ३ ॥

उत त्वः पश्यन् न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन् न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं १ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥ ४ ॥

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति मायया एष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥ ५ ॥

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥ ६ ॥

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥ ७ ॥

ह्रदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ॥ ८ ॥

इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ॥ ९ ॥

जो प्रथम अग्रणी गिरा
जो श्रेष्ठ और जो निष्कलङ्क
नाम देने वाली उच्चरित हुई
उसने गुहास्थ को प्रेम द्वारा व्यक्त किया ॥१॥

धीरों ने मन से वाणी का संस्कार किया
उसमें मित्रों ने मैत्री का परिचय पाया
जिस भांति छलनी से कोई छाने सत्तू को
उनकी वाणी में भद्र लक्ष्मी का निवास ॥२॥

मख द्वारा वाणी के सोपान पार करके
कर प्राप्त उसे वितरित बहुत्र कर दिया पुनः
ऋषियों में निहित गिरा को वे कर सके प्राप्त
सातों गायक मिल करते उसका नवीकरण ॥३॥

देखते हुए भी नहीं देखता एक गिरा
निज देह अन्य को कर देती है व्यक्त वही
सुनने पर भी है अन्य न उसको सुन पाता
जिस भांति सुवसना प्रेम-पगी पत्नी पति को ॥४॥

कुछ कहते हैं वह दृढ़ आप्लावित मैत्री में
वन्ध्या गौ से हो कर वंचित करता विचरण
उससे कोई स्पर्धा का भाव नहीं रखता
उस द्वारा सेवित वाणी है निष्फल अपुष्प ॥५॥

सत्यज्ञ मित्र का परित्याग जो कर देवे
जो वह सुनता है, सुनता है वह व्यर्थ गिरा
वाणी में भी वह भागीदार नहीं होता
वह पुण्य मार्ग से रह जाता अनभिज्ञ सदा ॥६॥

हैं श्रोत्रवान् और नेत्रवान् सब सखा-वृन्द
हैं आमुख-वारि या आकक्ष-वारि कुछ सर
हैं मनोवेग में वे न किन्तु सबही समान
कुछ ऐसे जिनमें स्नान व्यक्ति कर सकता है ॥७॥

हैं मनोवेग उनके संस्कृत हृदय-द्वारा
कुछ पीछे रहते ज्ञात नहीं ज्ञातव्य जिन्हें
ब्रह्मज्ञ मित्र मिलकर करते जो यजन कर्म
कुछ आगे बढ़ते हैं जो कहलाते ज्ञानी ॥८॥

वे जो न बढ़ पाते आगे औ न पीछे
वे पाप-वृत्ति से वाणी को जकड़े रहते
न ब्रह्म जिन्हें है ज्ञात और न यज्ञ-कर्म
वाणी का ताना-बाना फैलाते अजान ॥९॥

सर्वे᳚ नन्दन्ति य॒शसाग॑तेन सभासा॒हेन॒ सख्या॒ सखा॑यः ।
कि॒ल्बि॒ष॒स्पृत् पि॑तु॒षणि॒र्ह्ये᳚षा॒मरं॑ हि॒तो भव॑ति॒ वाजि॑नाय ॥१०॥

ऋ॒चां त्व॒ः पोष॑मास्ते पुपु॒ष्वान् गा॑य॒त्रं त्वो᳚ गायति॒ शक्व॑रीषु ।
ब्र॒ह्मा त्वो॒ वद॑ति जातवि॒द्यां य॒ज्ञस्य॒ मात्रां॒ वि मि॑मीत उ त्वः ॥११॥

सब मित्र-वृन्द होते प्रसन्न जब मित्र कोई
वह पाप दूर करता, करता उनका पोषण

आता यश-पूर्वक जय प्राप्त कर परिषद् में
रहता है तत्पर सदा प्रतिस्पर्धार्थ तथा ॥१०॥

पोषक ऋग्वेत्ता करता है कोई पोषण
कोई ब्रह्म सत्ता की विद्या बतलाता

शक्वरी छन्द में गाता है गायक कोई
कोई बतलाता नियम यज्ञ की मात्र के ॥११॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नन्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद्द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ १ ॥

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः ॥ २ ॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥ ३ ॥

त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥ ४ ॥

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥ ५ ॥

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ ६ ॥

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृपं उक्थशासश्चरन्ति ॥ ७ ॥

इन्द्रियों के पिता धीर-मन ने दिया
पूर्व-सीमा बनायी सुदृढ़ और फिर
जन्म जल को तथा तैरते द्वन्द्व को
कर दिया नभ-धरा को प्रथित देव ने ॥१॥

विश्वकर्मा विपुल-चित्त बहु-मुख-महिम
कामना अन्न-युत तुष्ट उनकी जहां
सृष्टि-स्रष्टा निर्देशक परम दृष्टि-युत
है कहाता परम सप्त-ऋषि से परे ॥२॥

जो हमारा पिता और माता-पिता
नाम देता अकेला सुरों को है जो
जो सृजक लोक और धाम को जानता
पूछने दूसरे लोक जाते उसे ॥३॥

वे पुराने ऋषि बन्दिओं की तरह
था जिन्होंने अलंकृत चराचर जगत में
धन यजन कर रहे भूमा द्वारा उसे
सभी प्राणियों को प्रभा से किया ॥४॥

स्वर्ग से जो परे औ धरा से परे
कौन सा वह प्रथम गर्भ धारे सलिल
देवगण से परे दैत्यगण से परे
देवगण देखते हैं परस्पर जहां ॥५॥

वह प्रथम गर्भ धारण किये था सलिल
कि जहां सर्व ब्रह्माण्ड सुस्थिर बना
देवगण सर्व जिसमें समाहित हुए
वह समर्पित हुआ एक अजनाभि में ॥६॥

जन्म जिसने दिया है इन्हें, तुम उसे
धुंद से वे घिरे जल्प करते फिरें
जानते हो नहीं, अन्य वह भिन्न है
जो स्तुति-रत मगर पेट के भक्त हैं ॥७॥

यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥ १ ॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।
मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥ २ ॥

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥ ३ ॥

त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥ ४ ॥

अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीळाहं स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि ॥ ५ ॥

अयं ते अस्म्युप मेह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः ।
मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः ॥ ६ ॥

हे मन्यो ! वज्र ! विनाशक ! जो तेरा पूजक
शक्तिप्रद साहसयुक्त शक्तिशाली तुम से
वह साथ साथ सब शक्ति ओज प्राप्त करता
मिलकर हम दास औ आर्यजनों को जीत सकें ॥१॥

हे मन्यु इन्द्र, मन्यु ही देव एवं मन्यु
मानुषी प्रजा जो हैं, करती स्तुति मन्यु की
होता है अग्नि तथा सर्वज्ञ वरुण भी है
हे मन्यो ! तप से हो प्रसन्न हमको पालो ॥२॥

हे शक्तिशालियों में सशक्त मन्यो ! आओ
हे शत्रुविनाशक ! वृत्रघ्न ! दस्युहन्ता !
तप से मिलकर कर डालो नाश शत्रुओं का
दो हमें समस्त विभव-धन-सम्पत् पूर्णतया ॥३॥

हे मन्यो ! तुम करते अभिभूत ओज से हो
तुम सर्व-दृष्टि, दृढ़ तथा शक्ति से संयुत हो
हो स्वयम्प्रभव क्रोधी ओ शत्रुविनाशक भी
सो हमें युद्ध-भूमि में ओज प्रदान करो ॥४॥

हे मन्यो ! तेरी पूजा में नहीं भाग लिया
मैं तुम से यद्यपि क्रुद्ध तो भी मेरी
बिन पूजे बलशाली भी मैं पीछे लौटा
काया से मिलकर मुझको शक्ति प्रदान करो ॥५॥

मैं तेरा हूँ, आओ, मेरे प्रति बढ़ आओ
मन्यो ! मेरे प्रति आओ, मारें दस्यु को
हे प्रतिरोधक ! हे जगपालक ! हे वज्रधारि !
अपने बन्धु-जन के प्रति सोच विचार करो ॥६॥

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभा उपांशु प्रथमा पिबाव ॥ ७ ॥

आओ मेरे दक्षिण की ओर चले आओ
मैं तुमको देता मधु का श्रेष्ठ अंश धारक !
आओ हम दोनों वृत्रों को बहुशः मारें
पहले इसको दोनों मिलकर पीलें उपांशु ॥७॥

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १ ॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥ ३ ॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥ ४ ॥

यत् त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥ ५ ॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ॥ ६ ॥

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥ ७ ॥

स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराऽग्निरासीत् पुरोगवः ॥ ८ ॥

विवाह **सूर्या (सावित्री)** **ऋ० १०, ८५**

सत्य से पृथ्वी टिकी है
है टिके आदित्य ऋत से
सोम से आदित्य बल-
इस तरह नक्षत्रगण की

पीस कर कोई लता यह मानता
जानते हैं ब्रह्मविद् जिस सोम को

गुप्त संरक्षित विधानों से तथा
तुम खड़े हो सुन रहे पाषाण को

देव ! करते पान हैं तेरा जहां
सोम का रक्षक पवन है, चन्द्रमा

रैभ्या देय दासी थी
भद्रवस्त्र सूर्या के

तकिया विचारों का
मंजूषा गगन-पृथ्वी

स्तोत्र अरे पहियों के
अश्विन् थे सूर्या-वर

सूर्य से अम्बर टिका
सोम अम्बर में टिका ॥१॥

-शाली, महा भू सोम से
गोद में स्थापित है सोम ॥२॥

सोम-रस है पी लिया मैंने, मगर
पी न पाता है कोई उस सोम को ॥३॥

छन्द बृहती से सुरक्षित सोमदेव !
मर्त्य पी पाता न है कोई तुम्हें ॥४॥

तू पुनः परिपूर्ण हो जाता वहां
वर्ष का निर्माण करता सर्वतः ॥५॥

भृत्या नाराशंसी
गाथा से शोभित थे ॥६॥

काजल थी दृष्टि बनी
सूर्या पति निकट चली ॥७॥

छन्द थी कुरीर साज
अग्निदेव पुरोगामी ॥८॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादददात् ॥ ९ ॥

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या गृहम् ॥१०॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११॥

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्याऽऽरोहत् प्रयती पतिम् ॥१२॥

सूर्यायै वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥१३॥

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन् पुत्रः पितराववृणीत पूषा ॥१४॥

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
कैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१५॥

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्रातय इद्विदुः ॥१६॥

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः ॥१७॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥१८॥

नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥१९॥

सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥२०॥

सोम था वधू-काम
पति को सराहती

वर अश्विन्, मन ही मन
सूर्या दी सविता ने ॥९॥

मन ही वधू का रथ
शुक्र दो बैल बने

आवरण अम्बर था
सूर्या ससुराल चली ॥१०॥

ऋचा-साम ने जोड़े
श्रोत्र थे चक्र, मार्ग

बैल सम दूरी पर
गति-स्थिति-हेतु नभ ॥११॥

चलने पर चक्र विमल
सूर्या मनो-रथ चढ़

व्यान-वायु अक्ष बनी
पति के समीप चली ॥१२॥

सूर्या बारात चली
बैल हंके माघों में

सविता ने विदा किया
विदा हुई अर्जुनी में ॥१३॥

तीन चक्र के रथ पर सूर्या-विवाह का
सभी देवताओं ने स्वीकृति दी थी इसकी

लेकर के प्रस्ताव अश्विनी जब तुम आये
सुत पूषा ने तुम्हें जनक अपना माना था ॥१४॥

जब शुभस्पति आये
कहाँ था एक चक्र ?

सूर्या-हित दातृ-निकट
कहां टिके देने को ? ॥१५॥

सूर्ये ! तुम्हारे दो चक्र
जानते, गुह्य चक्र ज्ञात

विप्र ऋतुओं में
ऋषियों को ही ॥१६॥

सूर्या को देवों को
और जो प्राणि-विद्

मित्र-वरुण द्वन्द्व को
सबको हो नमस्कार ॥१७॥

ये दोनों माया से अन्योऽन्य-अनुगामी
एक सकल भुवनों का करता निरीक्षण, अन्य

खेलते बालक से यज्ञ में आते हैं
ऋतुएं बनाता बारबार जन्म लेता है ॥१८॥

होता उत्पन्न नित्य नूतन यह चन्द्रमा
आने पर देता है देवों को यज्ञभाग

दिनका प्रतीक आता उषा के आगे है
चन्द्रमा आयुष् को दीर्घतर बनाता है ॥१९॥

किंशुक के, शाल्मलिवृक्ष के, विश्व रूप,
सूर्ये ! इस अमृत-पद रथ पर आरूढहो

सुनहरी, रम्य-चक्र, सुन्दर मढ़े हुए
पति के हेतु वर-यात्रा सुखप्रद बना ॥२०॥

उदीर्ष्वातः पतिवती ह्ये३षा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे ।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥२१॥
उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळामहे त्वा ।
अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं१ सं जायां पत्या सृज ॥२२॥
अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात् सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः ॥२३॥
प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबध्नात् सविता सुशेवः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥२४॥
प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥२५॥
पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याऽश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२६॥
इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं१ सं सृजस्वाऽधा जिव्री विदथमा वदाथः ॥२७॥
नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥२८॥
परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पतिम् ॥२९॥
अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद्वध्वो३ वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते ॥३०॥
ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥३१॥
मा विदन् परिपन्थिनो य आसीदन्ति दंपती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥३२॥